१७

महाव्रतों का भंग-दर्शन

जैन-धर्म एवं दर्शन की आधार शिला मुख्य रूप से दो अर्थ-गंभीर शब्दों पर स्थित है। 'द्रव्य' और 'भाव'—ये दो महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द हैं, जिनकी परिक्रमा चिर-काल से जैनत्व की चिन्तनिका करती आ रही है। लौकिक और लोकोत्तर, दोनों ही पक्षों पर योग्य निर्णय, इन दो शब्दों के आधार पर किए जाते रहे हैं। साधना-पक्ष के तो ये दो शब्द वस्तुतः अन्तःप्राण ही हैं। इनके बिना धर्म-साधना की गति एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती।

जैन-दर्शन में चतुर्भंगी का बहुत अधिक महत्त्व है। स्थानांग आदि आगम तथा आगमोत्तर साहित्य में अधिकतर चतुर्भंगी के द्वारा ही वस्तु-तत्त्व की यथार्थ दृष्टि व्याख्यायित है। मौलिक चिन्तन की दृष्टि से चतुर्भंगी, धर्म और दर्शन के यथार्थ सत्य को उजागर करने के लिए, वस्तुतः एक दिव्य ज्ञान-ज्योति है। यही कारण है कि जैन वाङ्मय में द्रव्य और भाव की भी चतुर्भंगी प्ररूपित की गई है।

दो विभिन्न पक्षों को लेकर जब चिन्तन अग्रसर होता है, तो उनके अस्तित्व तथा नास्तित्व आदि के रूप में चार 'भंग' अर्थात विकल्प बन जाते हैं। यही चतुर्भंगी है—

'चतुर्णां भंगानां समाहार चतुर्भंगी'

अन्यत्र न जाकर प्रस्तावित द्रव्य और भाव पर ही प्रस्तुत में चतुर्भंगी घटित की जाती है :

१. 'द्रव्य है, परन्तु भाव नहीं है'—यह एक भंग अर्थात विकल्प है।
२. 'भाव है, परन्तु द्रव्य नहीं है'—यह दूसरा विकल्प है।
३. 'द्रव्य भी है, भाव भी है'—दोनों का सह-अस्तित्व रूप तीसरा विकल्प है।
४. 'द्रव्य भी नहीं, भाव भी नहीं'—दोनों का एक साथ नास्तित्व रूप चतुर्थ विकल्प है।

जैन-दर्शन में कर्म-बन्ध से पूर्व कर्मों के आश्रव की चर्चा है। आश्रव कारण है, और बन्ध उसका कार्य है। साधना का मुख्य अंग आश्रव-निरोध है, जिसे संवर नाम से अभिहित किया गया है—**'आश्रव निरोधः संवरः'** तत्त्वार्थसूत्र, ९, १। स्पष्ट है, कारण का निरोध होने पर कार्य का निरोध स्वतः ही हो जाता है—**'कारणाभावे कार्याभावः।'**

प्राणातिपात—हिंसा, मृषावाद—असत्य, अदत्तादान—स्तेय अर्थात चौर्य, मैथुन—अब्रह्मचर्य और परिग्रह—ये पाँच आश्रव हैं, जो कर्म-बन्ध के हेतु हैं। इनके प्रतिपक्ष प्राणातिपातविरमण—अहिंसा, मृषावादविरमण—सत्य, अदत्तादान-विरमण—अस्तेय, मैथुन-विरमण—ब्रह्मचर्य और परिग्रहविरमण-अपरिग्रह—ये पाँच संवर हैं, जो आश्रव-निरोध रूप हैं।

जैन-दर्शन में हिंसा आदि पाँच आश्रवों की निवृत्तिरूप अहिंसा आदि संवर ही मुख्यत्वेन धर्म-साधना है, जिसे व्रत नाम से अभिहित किया गया है। **'हिंसाऽनृत—स्तेयाऽब्रह्म-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्'—तत्त्वार्थसूत्र, ७, १। श्रावक-श्राविका और साधु-साध्वी की साधना के रूप में, ये ही क्रमशः अणुव्रत तथा महाव्रत के रूप में प्रसिद्ध हैं। अपनी जीवन भूमिका के अनुरूप श्रावक के लिए, हिंसा आदि की अमुक अंश में मर्यादाबद्ध आंशिक निवृत्तिरूप अहिंसा आदि अणुव्रत हैं और सर्वथा सर्वांश में हिंसा आदि की निवृत्ति रूप अहिंसा आदि साधु के लिए महाव्रत हैं। इन्हीं का देश-विरत तथा सर्व-विरत के रूप में भी उल्लेख है।

यद्यपि साधु के लिए मन, वचन और काय से कृत, कारित और अनुमोदित रूप में हिंसा आदि की महाव्रती-प्रतिज्ञासूत्र में सर्वविरतिता वर्णित है, परन्तु जीवन-यात्रा में ऐसी सर्वथा विरति घटित होती नहीं है, यह प्रत्यक्ष में परिलक्षित है। उक्त विरोधाभास का समाधान भाव-पक्ष में है। सर्वथा निवृत्ति की भावना है, तदर्थ यत्नशीलता भी है, फिर भी परिस्थिति विशेष में यथाप्रसंग अतिक्रमण हो ही जाता है, तो उसकी प्रतिक्रमण आदि के द्वारा शुद्धि कर ली जाती है। अतः सर्वविरति का स्वरूप जागृत यत्नशीलता में है, और भाव में है। और, उक्त स्थिति को यथायोग्य समझने के लिए प्रस्तुत में द्रव्य और भाव की चतुर्भंगी का स्पष्ट बोध अपेक्षित है।

अहिंसा आदि की साधना के लिए सर्व प्रथम हिंसा आदि को स्पष्टतया समझ लेना आवश्यक है। क्योंकि हिंसा की निवृत्ति आदि ही तो अहिंसा आदि है। अतः जिनकी निवृत्ति करनी है, जिनसे अपनी आत्म-चेतना को मुक्त रखना है, मुक्त रखने की यत्नशीलता—साधना करना है, उनका यदि सम्यक्-बोध नहीं है, तो फिर अज्ञानता की अन्धस्थिति में निवृत्ति का क्या अर्थ रह पाता है? इसलिए दशवैकालिक सूत्र के चतुर्थ अध्ययन में भगवद् वचन है—**अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेय-पावगं।**"

जीवन के दो पक्ष हैं—अन्तरंग और बहिरंग। हिंसा आदि कब, किस स्थिति में, किस रूप में आश्रव रूप होते हैं, और कब आश्रव रूप न होकर अनाश्रव अर्थात संवर रूप होते हैं, यह व्यक्ति के अन्तरंग और बहिरंग स्थिति पर आधारित है। अन्तरंग भाव पक्ष है, और बहिरंग द्रव्य पक्ष। हिंसा और अहिंसा आदि मूल में व्यक्ति का अपना एक भाव, एक विचार, एक संकल्प होता है। और, उसी के आधार पर आश्रव एवं बन्ध की तथा संवर और निर्जरा की स्थिति है। बहिरंग रूप अकेले द्रव्य का उक्त स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है। न वह आश्रव, बन्ध का हेतु है और न संवर, निर्जरा का—'**असिद्धं बहिरंगमन्तरंगे।**'

तत्त्वद्रष्टा आगम मर्मज्ञ जैनाचार्यों ने प्रस्तुत सन्दर्भ में द्रव्य और भाव की जो चतुर्भंगी प्ररूपित की है, उस पर से हिंसा-अहिंसा आदि के स्वरूप का स्पष्टतः परिबोध हो जाता है। और इस परिबोध के आधार पर अहिंसा आदि व्रतों के साधना-पक्ष की अनेक गूढ़ ग्रन्थियों तथा भ्रान्तियों का निराकरण हो जाता है।

प्रतिपाद्य की भूमिका लंबी न करूं। आइए, चर्चित बोध के लिए महान् आचार सूत्र दशवैकालिक सूत्र की निर्युक्ति, चूर्णि, टीका, दीपिका आदि के प्रकाश में चिन्तन-यात्रा शुरू करें।

दशवैकालिक सूत्र पर चतुर्दशपूर्वविद, पंचम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु की प्राकृत-गाथाबद्ध निर्युक्ति है, जो उक्त सूत्र की पहली व्याख्या है। यह श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के १७० वर्ष के आस-पास शब्दबद्ध हुई है। आचार्य भद्रबाहु की गरिमा जैन-परम्परा के प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी पक्षों में आदृत है। उनकी प्रामाणिकता सन्देह से परे है। दशवैकालिक की अपनी निर्युक्ति में, जिसमें निर्युक्ति पर का भाष्य भी अन्तर्गभित है, अहिंसा के द्रव्य-भाव से सम्बन्धित चार रूप निर्धारित किए हैं, इसी के आधार पर उत्तरकालीन जिनदास आदि आचार्यों ने सत्य, अस्तेय आदि पर भी द्रव्य-भाव की चतुर्भंगी घटित की है।

आचार्य भद्रबाहु की निर्युक्ति का द्रव्य-भाव से सम्बधित संकेतपरक पाठ इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"हिंसाए पडिवक्खो, होइ अहिंसा चउव्विहा सा उ।
दव्वे भावे अ तहा, अहिंसाऽजीवाइ वा उ त्ति ॥४५॥"

—हिंसा का प्रतिपक्ष अहिंसा है। और, वह द्रव्य और भाव से चार प्रकार की होती है। अहिंसा और अजीवातिपात, मूलतः एकार्थक हैं।

उपर्युक्त निर्युक्ति के द्वारा निरूपित द्रव्य-भाव के चतुर्विधत्व का, महान् श्रुतधर आचार्य जिनदास महत्तर और आचार्य हरिभद्र ने, उदाहरणों के द्वारा बहुत स्पष्टता से वर्णन किया है। और, यही वर्णन अन्य ग्रन्थों में भी, कहीं विस्तार से, तो कहीं संक्षेप से, उल्लिखित होता रहा है।

श्री जिनदास महत्तर द्वारा रचित दशवैकालिक चूर्णि अभी मेरे समक्ष नहीं है, अतः श्री हरिभद्र सूरीश्वर की दशवैकालकीय बृहदवृत्ति से ही हिंसा आदि से सम्बन्धित द्रव्य-भाव की चर्चित चतुर्भंगी का बोध-पाठ दिया जा रहा है। बृहदवृत्ति में प्रस्तुत चर्चा का अधिकांश भाग जिनदासीय चूर्णि से ही उद्धृत है और अपने में यह अच्छा ही है कि इस तरह सहज ही प्रस्तुत प्रतिपाद्य पर दो बहुविश्रुत एवं बहुश्रुत आचार्यों की विचार-मुद्रा अंकित हो जाती है।

चूर्णि एवं बृहद वृत्ति का अहिंसा के प्रसंग में भंग-क्रम एक होते हुए भी मेरे लेखन से कुछ भिन्न है। दोनों में द्रव्य और भाव का सह अस्तित्वरूप सम्मिलित भंग 'द्रव्य-भाव' पहले दिया गया है, शेष भंग बाद में हैं। मैंने यहाँ स्पष्ट बोध के लिए सर्वप्रथम द्रव्य, तत्पश्चात भाव और तदनन्तर सह अस्तित्वरूप संयुक्त द्रव्यभाव और अन्त में 'नो द्रव्य नो भाव'—यह क्रम दिया है। केवल क्रम में ही सहज रूप से सर्वसाधारण के अर्थ-बोधार्थ आवश्यक परिवर्तन है, जो सुरुचिशील पाठकों द्वारा क्षन्तव्य है। एतदतिरिक्त शब्द और भाव ज्यों के त्यों हैं, उनमें मेरी ओर से कुछ नहीं किया गया है। आगे जाकर चतुर्थ अध्ययन में सत्यादि की विवेचना के प्रसंग में आचार्य द्वय ने भी चतुर्भंगी का मदुक्त क्रम ही अपनाया है।

हिंसा—अहिंसा से सम्बन्धित चतुर्भंगी :

१. **'द्रव्यतो न भावतः।' सा खलु ईर्यादि-समितस्य साधोः कारणे गच्छत इति। उक्तं च—**

उच्चालियं मि पाए,
इरियासमियस्स संकमट्ठाए।
वावज्जेज्ज कुलिंगी,
मरिज्ज तं जोगमासज्ज ॥ १ ॥
न य तस्स तन्निमित्तो,
बन्धो सुहमो वि देसिओ समए।
जम्हा सो अप्पमत्तो
सा उ पमाओ त्ति निद्दिट्ठा ॥ २ ॥—**ओघनिर्युक्ति, ७४८-४९**

'द्रव्य से हिंसा है, किन्तु भाव से नहीं'—यह प्रथम भंग है। यथाप्रसंग ईर्यादि समिति से गमनागमन करते हुए मुनि के द्वारा भी कदाचित् जो हिंसा हो जाती है, वह स्थूल द्रव्य-रूप में बाह्य द्रव्य-हिंसा तो है, किन्तु मुनि के अन्तरंग भाव में हिंसा नहीं है, हिंसा की कोई परिणति नहीं है। अतः यह द्रव्य-हिंसा कर्मबन्ध की हेतु नहीं है। इस सम्बन्ध में आचार्य भद्रबाहु का एक परंपरागत प्राचीन कथन है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—ईर्या समिति से गमन करते हुए मुनि के पैर के नीचे भी कभी कभार कीट आदि क्षुद्र-प्राणी दब कर मर जाते हैं, उनकी हिंसा हो जाती है।

—परन्तु उक्त द्रव्य हिंसा से उस मुनि को सिद्धान्त में सूक्ष्म मात्र भी कर्म-बन्ध नहीं बताया गया है, क्योंकि मुनि अप्रमत्त है, अन्तरंग में जागृत है, और सिद्धान्त में हिंसा तो प्रमादरूप में निर्दिष्ट है।

२. 'या पुनर्भावतो न द्रव्यतः' सेयम्—जहा के वि पुरिसे मंद-मंदप्पगासप्पदेसे संठियं ईसिवलियकायं रज्जुं पासित्ता, एस अहि त्ति तव्वहपरिणामए णिकड्ढियासिपत्ते दुअं दुअं छिंदिज्जा। एसा भावओ हिंसा, न दव्वओ।

'भाव से हिंसा है, किन्तु द्रव्य से नहीं है'—यह द्वितीय भंग है। जैसे कि कोई व्यक्ति कुछ अधिक मन्द प्रकाश वाले प्रदेश में बक्र रूप से आडी-तिरछी पड़ी हुई रस्सी को भ्रम से सर्प समझ लेता है और तलवार लेकर सहसा उसके दो खण्ड (टुकड़े) कर डालता है। स्पष्ट ही यहाँ सर्परूप प्राणी की हिंसा तो नहीं हुई है, किन्तु सर्प मारने का भाव होने से भाव-हिंसा है। अतः प्रस्तुत भंग में प्राणातिपात रूप हिंसा का दोष होने से कर्म-बन्ध है।

३. द्रव्यतो भावतश्चेति।' जहा केई पुरिसे मियवह-परिणाम-परिणए, मियं पासिता आयन्नाइड्ढियकोदंडजीवे सरं णिसिरिज्जा। से य मिए तेण सरेण विद्धे मए सिया। एसा दव्वओ हिंसा, भावओ वि।

'द्रव्य से भी हिंसा और भाव से भी'—यह तृतीय भंग है। द्रव्य और भाव, दोनों से हिंसा होने की स्थिति संकल्पपूर्वक किसी प्राणी की हिंसा कर देने में है। जैसे कि कोई शिकारी मृग को मारने के भाव से कान तक धनुष की प्रत्यंचा को जोर से खींच कर लक्ष्य—सन्धानपूर्वक बाण से मृग को बींधता है, और मृग मर भी जाता है। यहाँ मारने के भाव से मृग को मारा गया है, अतः यह द्रव्य हिंसा भी है, और भाव-हिंसा भी। प्रस्तुत उभयमुखी हिंसा भी कर्म-बन्ध की हेतु है। क्योंकि इसमें द्रव्य के साथ हिंसा का भाव स्पष्टतः संलग्न है, जो **'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणम्'** के अनुसार कर्म-बन्ध हेतुक हिंसा की परिभाषा में आता है।

४. 'चरमभंगस्तु शून्यः'—

चतुर्थ भंग शब्दोल्लेख रूप में है—'न द्रव्य से हिंसा और न भाव से हिंसा।' यह भंग शून्य है। क्योंकि इस रूप में हिंसा की क्रियात्मक एवं भावात्मक कहीं कोई स्थिति ही नहीं होती है। हिंसा के मूल में दो ही रूप है—द्रव्य और भाव। तीसरा भंग दोनों के मिलन का है। अतः दोनों के निषेध में हिंसा का कोई रूप ही नहीं बनता। अतः चतुर्थ भंग अर्थशून्य है, केवल शब्द मात्र है।

असत्य-सत्य से सम्बन्धित चतुर्भंगी :

१. तत्थ को वि कंहि वि हिंसमुज्जुओ भणइ—'दूओ तए पसुमिगाइणो दिट्ठ' त्ति। सो दयाए दिट्ठा वि भणइ—'ण दिट्ठ' त्ति। एस दव्वओ मुसावाओ, नो भावओ।

कोई व्यक्ति वन-प्रदेश आदि में स्थित मुनि से पूछता है कि 'इधर से मृग आदि पशु गए हैं क्या ?' मुनि ने देखे हैं, फिर भी प्राणिरक्षारूप दया के भाव से कहता है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नहीं, मैंने नहीं देखे हैं।' यह द्रव्य रूप से शाब्दिक मृषावाद अर्थात असत्य है, किन्तु भाव से नहीं है। क्योंकि मुनि अपने किसी वैयक्तिक स्वार्थ आदि की दृष्टि से असत्य के लिए असत्य नहीं बोल रहा है। प्रस्तुत प्रसंग में प्राणि दया की दृष्टि से केवल शब्द रूप में ही असत्य है, भाव में नहीं। अतः यह द्रव्य असत्य है, भाव असत्य नहीं। भाव असत्य न होने से यह बाह्य असत्य होते हुए भी अन्तरंग में हित होने से सत्य की कोटि में आता है। इसके फलस्वरूप मुनि का मृषावाद—विरमणरूप सत्य महाव्रत खण्डित नहीं होता है।

आचारांग सूत्र के द्वितीय स्कन्ध में प्रस्तुत सन्दर्भ से ही सम्बन्धित "जाणं वा णो जाणं ति वदेज्जा" का जो भाव-बोध है, वही आगम-मर्मज्ञ चूर्णिकार तथा टीकाकार आचार्यों के शब्दों में मुखरित हुआ है। आचारांग सूत्र में स्पष्ट कथन है कि मुनि प्राणि-दया के हेतु मृगादि को जानता हुआ भी कह दे कि 'नो जानं'—मैं नहीं जानता, मुझे नहीं मालूम, मैंने नहीं देखे।

जैन-धर्म भाव-प्रधान धर्म है। यहाँ बन्ध और मोक्ष व्यक्ति की भावधारा पर ही आधारित हैं। अतः आचारांग आदि के व्रत-साधना सम्बन्धी उक्त विश्लेषण भावना की गुणवत्ता के स्पष्टतः उद्घोषक हैं। आगमों के भावों को साम्प्रदायिक मोह से मुक्त हो कर ही देखना, परखना, समझना एवं समझाना चाहिए। अस्तु, साम्प्रदायिक मान्यताओं एवं त्याग-वैराग्य की उत्कृष्टता के अहम् में उलझे महानुभावों से नम्र निवेदन है कि कृपया आचारांग के उक्त मूल पाठ का अर्थविपर्यास न करें, जैसा कि प्रायः वे आजकल कर रहे हैं। विद्वानों की दृष्टि में उनकी यह व्यर्थ की उपहासास्पद चेष्टा है। उन्हें पता होना चाहिए, इस प्रकार के शास्त्र एवं परम्परा के विरुद्ध अनर्गल एवं असत्य अर्थ-विपर्यास आगम-भक्त प्राचीन बहुश्रुत आचार्यों के प्रति स्पष्ट ही अवहेलना की निकृष्टतर अपभ्राजना के द्योतक हैं।

नायाधम्म कहाओ—ज्ञातासूत्र आदि में श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा भव्य जीवों के प्रतिबोध के हेतु अनेक कल्पित कथाएँ कही गई हैं, वे भी यथार्थ में घटित न होने के कारण शब्द रूप में तो द्रव्य असत्य हैं, किन्तु आध्यात्मिक भाव की प्रतिबोधकता में हेतु होने से भाव सत्य हैं। उत्तरकालीन आचार्यों के भी इसी प्रकार के अनेक कल्पित बोध-वचन सत्य से सम्बन्धित उक्त प्रथम भंग की कोटि में आते हैं।

२. अवरो 'मुसं भणीहामि' त्ति परिणओ, सहसा सच्चं भणइ। एस भावओ न दव्वओ।

एक व्यक्ति अपने स्वार्थ आदि की पूर्ति के हेतु दूसरे को धोखा देने के लिए असत्य बोलने का विचार करता है, किन्तु हड़बड़ी में उसके मुख से सहसा सच्ची बात बोल दी जाती है। अतः यह भाव से असत्य है, द्रव्य से नहीं। यह द्वितीय भंग कर्म-बन्ध का हेतु है। क्योंकि मुख से शब्द रूप में भले ही सत्य बोला गया हो, किन्तु मन में तो असत्य बोलने के, धोखा देने के भाव हैं, अतः कर्म-बन्ध का होना सुनिश्चित है।

३. अवरो मुसं भणीहामि त्ति परिणओ मुसं चेव भणइ। एस दव्वओ वि भावओ वि।

तृतीय भंग द्रव्य और भाव का मिश्रित भंग है। एक व्यक्ति असत्य बोलने का विचार करता है, और तदनुसार असत्य बोल भी देता है, यह द्रव्य और भाव अर्थात् मन और वाणी दोनों से असत्य है। उक्त भंग में असत्य का भाव होने से यह भी असत्य आश्रव-जन्य कर्म-बन्ध का हेतु है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. **चउत्थो भंगो पुण सुन्नो।**

चतुर्थ भंग है—न द्रव्य से असत्य, और न भाव से असत्य। यह भंग हिंसा के पूर्वोक्त चतुर्थ भंग के समान शून्य भंग है। क्योंकि इस प्रकार के उभयनिषेधात्मक असत्य की जीवन में कोई स्थिति ही नहीं होती है।

स्तेय-अस्तेय से सम्बन्धित चतुर्भंगी :

१. **अरत्त-दुट्ठस्स साहुणो कहिं वि अणणुण्णवेऊण तणाइ गेण्हओ दव्वओ अदिन्नदाणं, णो भावओ।**

राग-द्वेष के भाव से मुक्त मुनि, किसी प्रयोजन विशेष से कहीं पर, बिना किसी की आज्ञा के जो तृणादि वस्तु ग्रहण कर लेता है, वह द्रव्य से तो अदत्तादान अर्थात स्तेय है, किन्तु भाव से नहीं, क्योंकि यहाँ शान्तचेत्ता मुनि के अन्तर्मन में चौर्य-वृत्ति-जैसा कोई भाव नहीं है।

व्यवहार सूत्र में यही बात, परिस्थिति-विशेष में अदत्त-वसत्ति के ग्रहण-प्रसंग में भी निर्दिष्ट है।

श्वास-उच्छ्वास आदि की सहज क्रियाओं में वायुकाय आदि को ग्रहण करते समय भी यही प्रथम भंग, सर्वारंभ परित्यागी मुनि को हिंसा और अदत्तादान के दोष से मुक्त रखता है।

२. **हरामि त्ति अब्भुज्जयस्स तदसंपत्तीए भावओ, न दव्वओ।**

चोरी करने के भाव से कोई किसी की वस्तु चुराने को उद्यत अर्थात तैयार तो है, परन्तु किसी कारण से चुरा नहीं पाता है, यह भाव से अदत्तादान है, किन्तु द्रव्य से नहीं। भले ही चोरी न की हो, पर मन में चोरी की वृत्ति होने से अदत्तादान का यह भावरूप द्वितीय भंग कर्म-बन्ध का हेतु है।

३. **एवं चेव संपत्तीए भावओ दव्वओ वि।**

अदत्तादान का तीसरा भंग है—'द्रव्य से भी अदत्तादान और भाव से भी।' व्यक्ति चोरी करने का विचार भी रखता है, और भावानुसार चोरी कर भी लेता है। यह तृतीय भंग अदत्तादान सम्बन्धी कर्म-बन्ध का हेतु है।

४. **चरिमभंगो पुण सुन्नो।**

चतुर्थ भंग का रूप है—'न द्रव्य से अदत्तादान और न भाव से।' यह पूर्वोक्त चतुर्थ भंगों के समान शून्य है। ऐसा कौन-सा अदत्तादान है, जो न द्रव्य से हो और न भाव से? कोई भी नहीं।

अब्रह्म-ब्रह्म से सम्बन्धित चतुर्भंगी :

१. **अरत्त-दुट्ठाए इत्थियाए बला परिभुंजमाणीए दव्वओ मेहुणं नो भावओ।**

शीलवती किसी स्त्री का, यदि कोई दुष्ट अत्याचारी बलात्कार के द्वारा, शील-भंग करता है, तो यह नारी का केवल द्रव्य से मैथुन—अब्रह्मचर्य है, भाव से नहीं। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंग बाहर में द्रव्यतः शील-भंग होने पर भी भाव न होने से शील-भंग की कोटि में नहीं आता। अतः उक्त द्रव्य भंग से किसी भी प्रकार के पाप कर्म का बन्ध नहीं होता। पूर्व में अनेक बार स्पष्ट किया जा चुका है कि भावहीनता की स्थिति में केवल जड़ शरीर की क्रिया से अच्छा या बुरा कुछ भी शुभाशुभ नहीं होता।

यदि कोई नारी या नर साधु-मर्यादा न जानने के कारण भावनावश सहसा विरक्त साधु या साध्वी के चरण-स्पर्श कर लेते हैं, तो इसमें ब्रह्मचर्य की दृष्टि से न नर और नारी दूषित होते हैं और न साधु-साध्वी। क्योंकि दोनों के ही अन्तरंग में अब्रह्मचर्य का कोई भाव नहीं है।

आगमों में साधु द्वारा नदी में डूबती साध्वी को निकालने, रोग विशेष की स्थिति में परिचर्या करने का विधान है। उक्त स्थिति में साधु द्वारा साध्वी का जो संघट किया जाता है, वह भी दोष कोटि में नहीं आता है, अपितु सेवा-वृत्ति होने से यह संवर-निर्जरा का हेतु अन्तरंग तप माना गया है। स्पष्ट है, जैन-दर्शन व्यवहार को मानता हुआ भी अन्ततः भाव पक्ष पर ही अवलम्बित है। वह भाव को ही प्रधानता देता है।

वर्तमान में जो नारी जाति पर बलात्कार की दुर्घटनाएँ होती हैं, उन्हें इसी प्रथम भंग के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। बलात्कारियों के उपद्रव से शीलवती नारी की पवित्रता नष्ट नहीं होती, अतः उसे दूषित न मानना चाहिए, व्यर्थ के अपवित्रता के नाम पर किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए। ऐसा करना स्वयं एक हिंसा है, असत्य है, अतः पापाचार है।

२. **मेहुणसन्ना परिणयस्स तदसंपत्तीए भावओ न दव्वओ।**

मन में मैथुन की, विषय वासना की वृत्ति है, किन्तु बाहर में परिस्थिति विशेष से अवसर न मिलने के कारण, उसकी पूर्ति न हो पाती है, यह भाव से मैथुन है, द्रव्य से नहीं। इस द्वितीय भंग में मैथुन का भाव होने से तन्मूलक कर्म-बन्ध होता है।

३. **एवं चेव संपत्तीए दव्वओ वि, भावओ वि।**

मैथुन की मन में वृति भी है, और बाहर में तदनुरूप पूर्ति भी कर ली जाती है, तो यह द्रव्य और भाव दोनों से मैथुन-सेवन है। यह तृतीय भंग भी भावमूलक होने से कर्म-बन्ध का हेतु है।

४. **चरिम-भंगो पुण सुन्नो।**

चतुर्थ भंग है—'न द्रव्य से मैथुन है और न भाव से।' यह भंग केवल शाब्दिक विकल्प मात्र है, अतः पूर्वोक्त चतुर्थ भंग के समान अर्थ से शून्य है, जीवन में उभयाभावापेक्षी चतुर्थ भंग की कोई स्थिति ही नहीं होती।

परिग्रह-अपरिग्रह सम्बन्धी चतुर्भंगी :

१. **अरत्त-दुट्ठस्स धम्मोवगरणं दव्वओ परिग्गहो, नो भावओ।**

वीतराग-चर्या में अनुरत साधु एवं साध्वी के धर्मोपकरण द्रव्य से परिग्रह हैं, भाव से नहीं। क्योंकि धर्मचर्या में उपकारी अर्थात् साधक होने से अमुक उपकरण विशेष धर्मोपकरण कहलाते हैं। मुनि अपने विहित धर्मोपकरणों का उपयोग, जीवदया आदि के हेतु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से संयमपोषक के रूप में करता है, मूर्च्छा अर्थात राग-भाव से, भोगासक्ति से नहीं करता है। अतः उक्त भंग शुद्ध है, इसमें परिग्रहमूलक कर्म-बन्धता नहीं है।

२. मुच्छियस्स तदसंपत्तीय भावओ, न दव्वओ।

किसी अभीष्ट वस्तु के प्रति मूर्च्छा है, आसक्ति है, किन्तु वह प्राप्त नहीं है। यहाँ भाव से परिग्रह है, द्रव्य से नहीं। यह द्वितीय भंग परिग्रह से सम्बन्धित वस्तु के न होने पर भी परिग्रह है, फलतः परिग्रहमूलक कर्म-बन्ध का हेतु है।

परिग्रह से सम्बन्धित प्रथम और द्वितीय भंग अतीव अर्थ-गंभीर हैं, अतः पूर्वाग्रहों से मुक्त तटस्थ चिन्तन की अपेक्षा रखते हैं। साधक व्यक्ति के पास किसी उपयोगी वस्तु का होना या न होना, परिग्रह की दृष्टि से मुख्य नहीं है। मुख्य है, वस्तु के प्रति व्यक्ति की भावना और दृष्टि। अमुक वस्तु यदि किसी विशिष्ट उपयोगिता की दृष्टि से साधन-रूप में रखी जाती है, एकमात्र आवश्यक शुद्ध उपयोगिता का ही भाव है, मूर्च्छा नहीं है, राग-भाव नहीं है, तो वह वस्तु बाहर में परिग्रह की गणना में होते हुए भी अन्तरंग भाव में परिग्रह नहीं है। यह बात सिद्धान्त से प्रमाणित है, दशवैकालिक सूत्र (६, २१) में परिग्रह की परिभाषा करते हुए कहा है—**'मुच्छा परिग्गहो।'** वस्तु नहीं, वस्तु की मूर्च्छा ही परिग्रह है। जैन-धर्म की सभी परंपराओं को मान्य मोक्षशास्त्र तत्त्वार्थाधिगम सूत्र (७, १७) में पूर्वविद बहु-श्रुत शिरोमणि आचार्य उमास्वाति ने भी दशवैकालिक के प्राकृत पाठ को संस्कृत में रूपान्तरित करते हुए शब्दशः यही कहा है—**'मूर्च्छा परिग्रहः।'** अर्थात मूर्च्छा परिग्रह है। परिग्रह चित्त की एक रागात्मक वृत्ति है। यदि वह है, तो वस्तु के न होते हुए भी परिग्रह है, और यदि वह रागात्मक वृत्ति नहीं है, तो वस्तु के होते हुए भी परिग्रह नहीं। वस्तु, मात्र वस्तु है, न वह परिग्रह है और न अपरिग्रह। साधना के लिए उपयोगी वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोछन आदि को इसीलिए परिग्रह की कोटि से अलग करते हुए दशवैकालिक (६, २२) में कहा है—**'न सो परिग्गहो।'** अर्थात् ये साधनोपयोगी सभी वस्तुएँ परिग्रह नहीं हैं।

उपर्युक्त परिग्रह और अपरिग्रह की व्याख्या के आधार पर ही देवाधिदेव तीर्थंकरों की छत्र, चामर, सिंहासन तथा समवसरण आदि की अनेक विभूतियाँ अपरिग्रह की कोटि में आती हैं। बाहर में स्वर्ग के इन्द्र तथा भूमण्डल के चक्रवर्ती आदि के परिग्रह से भी महान् परिग्रह हैं तीर्थंकर देवों का, परन्तु उनकी पूर्णतः निसंगता एवं वीतरागता ही उक्त द्रव्य परिग्रह को अन्तरंग में भाव परिग्रह की भूमिका तक पहुंचने नहीं देती है।

जहाँ तक रागादि भाव रूप परिग्रह का प्रश्न है, वह तो यदि देह में भी आसक्ति है, जीवन का मोह है, यश आदि की इच्छा है, यहाँ तक कि मुक्ति की भी कामना है, तो ये सब भी परिग्रह की सीमा में आ जाते हैं। आसक्ति मात्र परिग्रह है, बन्ध का हेतु है, फिर भले वह वस्तु कोई भी हो, किसी भी रूप में हो, प्राप्त हो या प्राप्त न भी हो।

३. एवं चेव संपत्तीय दव्वओ वि भावओ वि।

किसी वस्तु की आसक्ति है, और वह प्राप्त भी है, तो यह परिग्रह का तीसरा भंग है—"द्रव्य से भी परिग्रह और भाव से भी परिग्रह।" यह भंग स्पष्ट ही सामान्य साधक की बुद्धि में भी परिग्रह है, अतः विशेष व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखता।

४. चरम भंगो पुण सुन्नो

चतुर्थ भंग है—'न द्रव्य से परिग्रह और न भाव से।' यह भंग पूर्वोक्त चतुर्थ भंगों के समान केवल शब्द मात्र है, अर्थ से शून्य है। जीवन में परिग्रह की ऐसी कोई वस्तु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति ही नहीं होती, जो न द्रव्य से परिग्रह हो, न भाव से। क्योंकि परिग्रह आदि के मूल में दो ही तो रूप हैं, द्रव्य और भाव। इन्हीं के भावाभाव से अन्य भंग बनते हैं।

जैन-दर्शन मूलतः भाव-प्रधान अनेकान्त-दर्शन है। अतः यहाँ साधना-पद्धति के बाह्याचार से सम्बन्धित विधि-निषेध भी एकान्त नहीं हैं। जैन-धर्म में बाह्याचार की विस्तार से स्थापना होते हुए भी अन्ततः भावपक्ष को ही प्रधानता प्राप्त है। साधक की आन्तरिक परिणाम-धारा में ही बन्ध और मोक्ष है। अन्तरंग चेतना का शुद्धत्व, अशुद्धत्व ही क्रम से व्यक्ति के उत्थान तथा पतन का मूल हेतु है। उपर्युक्त हिंसा-अहिंसा आदि से सम्बन्धित चतुर्भंगी की मीमांसा भी इसी अनेकान्त बोध पर आधारित है।

शुद्ध अनेकान्त दृष्टि से मर्मज्ञ सुप्रसिद्ध जैनाचार्य पात्र-केशरी ने भी, देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करते हुए, प्रस्तुत सन्दर्भ से ही सम्बन्धित जो महत्त्वपूर्ण विवेचना की है, वह प्रत्येक तत्त्वजिज्ञासु को लक्ष्य में रखने जैसी है। आचार्य देव का स्पष्ट उद्घोष है—

"न चाऽसुपरिपीडनं नियमतोऽशुभायष्यते,
त्वया न च शुभाय वा न हि च सर्वथा सत्यवाक्।
न चाऽपि दम—दानयोः कुशल हेतुतैकान्ततो,
विचित्र नय—भंग जालगहनं त्वदीयं मतम्॥"
—पात्र केशरी स्तोत्रम्॥ ३६॥

—भगवन्! आपके द्वारा, प्राणि परिपीडन अर्थात हिंसा एकान्तरूप से न तो शुभ-हेतुता के रूप में मान्य है और न अशुभ हेतुता के रूप में। इसी प्रकार वचन की सत्यता और असत्यता का शुभाऽशुभत्व भी सर्वथा एकांत नहीं है। दम अर्थात इन्द्रियादि निग्रह रूप संयम और दान आदि के सम्बन्ध में भी यही बात है। इनकी कुशल हेतुता भी एकान्त नहीं है। भगवन्! आपका दर्शन विभिन्न नय-दृष्टियों के विचित्र भंगजाल से अतीव गहन, गूढ़ है।

आचार्य पात्रकेशरी, जिन्हें अन्यत्र निखिलतार्किक चूड़ामणि श्री विद्यानन्दि स्वामी के नाम से भी सम्बोधित किया है, कितना महान स्पष्ट प्रवक्ता आचार्य है। जिनकी दिव्य वाणी स्पष्टतः समुदघोषित करती है कि जिनेन्द्र देव की धर्मदेशना के गूढ़ रहस्य को अनेकान्त दृष्टि से ही समझा जा सकता है। आशा है प्रबुद्ध पाठक, बहुश्रुतशिरोमणि आचार्य जिनदास तथा आचार्य श्री हरिभद्र के स्यादवादी प्रवचनों पर आधारित प्रस्तुत लेख को भी मान्यताओं के एकान्तवादी आग्रह से मुक्त हो कर अनेकान्त दृष्टि से ही समझने का सत्यानुलक्षी प्रयत्न करेंगे।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org